UGC APPROVED JOURNAL NO. - 48836 ISSN-2348-2397

JOURNAL OF
ARTS, HUMANITIES AND SOCIAL SCIENCES

शोध सरिता

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPILANARY QUARTERLY BILINGUAL PEER REVIEWED REFERED RESEARCH JOURNAL

★ Vol. 4 ★ Issue 13 ★ January to March 2018

Editor in Chief

Dr. Vinay Kumar Sharma

D.Litt. - Gold Medalist

Published by

SANCHAR EDUCATIONAL & RESEARCH FOUNDATION LUCKNOW. U.P. (INDIA)

Website : http://www.seresearchfoundation.in
http://www.seresearchfoundation.in/shodhsarita

ISSN - 2348-2397
UGC Approved, Journal No. 48836
SHODH SARITA
SHODH SARIT
Vol. 4, Issue 13, January-March, 201
Page Nos. 88-9
AN INTERNATIONAL BILINGUAL PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

पं. राजेन्द्र प्रसाद शुक्ल की साहित्य साधना

❐ डॉ0 सीमा पाण्डे

शोध सारांश

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। दर्पण में हम केवल अपना स्वरूप नहीं निहारते, बल्कि स्वयं को सजाते–संवारते हैं। उसी प्रकार, कुछ ऐसे साहित्यकार भी होते हैं, जिनका उददेश्य केवल समाज का यथाचित्रण करना नहीं होता, बल्कि समाज को एक दिशा देने का प्रयास भी होता है। ऐसे साहित्यकारों में विधायिका के मर्मज्ञ पं. राजेन्द्र प्रसाद शुक्ल का नाम लिया जा सकता है। फरवरी, 1930 में छत्तीसगढ़ की माटी में उनका निर्माण हुआ और 20 अगस्त, 2006 को इसी माटी ने उन्हें अपने में समेट लिया।[1] वर्षीय जीवन के इस सफर में उनके व्यक्तित्व के विविध आयाम दिखते हैं। माटी से जुड़ाव ने उन्हें मात्र 13 वर्ष की उम्र में ही कलम का पुजारी बना दिया।

प0 राजेन्द्र प्रसाद शुक्ल ने अपनी रचनाएँ प्रायः प्रकृति की गोद में बैठकर की। इस बारे में वे बताते हैं कि मेरी अधिकांश गतिविधि व साहित्यिक रचनाएँ सिंघनपुरी गाँव के उत्तर–पश्चिम की ओर मुसलमानों की श्मशान भूमि के और आगे फुलवारी वाले चितवार नाग की जगह बहते हुए पानी के बीच उभरे हुए पत्थर के ऊपर बैठकर लिखी गयी हैं। मैं वहाँ जा कर घंटों बैठा रहता था।[2]

पं. राजेन्द्रप्रसाद शुक्ल के बारे में अध्ययन से पता चलता है कि उनके द्वारा लिखी गयी प्रकाशित/अप्रकाशित पुस्तकें निम्नलिखित हैं–

1. –शुक्ल, पं. राजेन्द्रप्रसाद : ''गमक'' (काव्य संग्रह), रामकृष्ण प्रकाशन, विदिशा, मध्यप्रदेश ,सन् 1985।
2. शुक्ल, पं. राजेन्द्रप्रसाद : ''लीक से हटकर''(निबंध संग्रह), स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, उ.प्र.1985।
3. शुक्ल, पं. राजेन्द्रप्रसाद : ''मेरी विचार यात्रा''(निबंध संग्रह) रामप्रसाद एण्ड सन्स आगरा, 1988।
4. शुक्ल, पं. राजेन्द्रप्रसाद : ''प्रश्नकाल से शून्यकाल तक''(संसदीय प्रक्रिया एवं कार्यप्रणाली पर मौलिकग्रंथ), रामप्रसाद एण्ड सन्स आगरा, 1988।
5. शुक्ल, पं. राजेन्द्रप्रसाद : ''धरती की बात'', शांति प्रकाशन, इलाहाबाद 1994।
6. शुक्ल, पं. राजेन्द्रप्रसाद : ''माटी की महक'' (महापुरुषों के जीवन पर आधारित कृति), रामकृष्ण प्रकाशन, विदिशा, मध्यप्रदेश, सन् 1998।
7. शुक्ल, पं. राजेन्द्रप्रसाद : ''गाँव की गोद में'' (आत्कथा भाग एक), प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली 2002।
8. शुक्ल, पं. राजेन्द्रप्रसाद : ''संस्कृति का प्रवाह (निबंध संग्रह), विद्या बिहार नई दिल्ली 2002।
9. शुक्ल, पं. राजेन्द्रप्रसाद : ''संसदीय समग्र''(संसदीय जीवन पर आधारित), सारांश प्रकाशन, दिल्ली, सन् 2003।
10. शुक्ल, पं. राजेन्द्रप्रसाद : ''लोकतंत्र में राज्यपाल''(संसदीय परम्परा पर) सारांश प्रकाशन, दिल्ली, सन् 2003।

*विभागाध्यक्ष–इतिहास विभाग, गुरू घासीदास केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छ.ग.

11. शुक्ल, पं. राजेन्द्रप्रसाद : ''छत्तीसगढ़ की माटी से (काव्य संग्रह), शताक्षी प्रकाशन रायपुर 2003।

12. शुक्ल, पं. राजेन्द्रप्रसाद : ''क्षितिज का विस्तार (आत्कथा भाग द्वितीय), सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली, सन् 2003।

13. शुक्ल, पं. राजेन्द्रप्रसाद : ''धुंधली पगडण्डियाँ'', राजसूर्य प्रकाशन दिल्ली सन् 2004।

14. शुक्ल, पं. राजेन्द्रप्रसाद : ''यथासंभव'' (काव्य संग्रह), वैभव प्रकाशन रायपुर सन् 2005।

15. शुक्ल, पं. राजेन्द्रप्रसाद : ''संघर्ष'' (आत्कथा भाग 3), वैभव प्रकाशन रायपुर सन् 2009।

प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. अजय पाठक ने पं. राजेन्द्रप्रसाद शुक्ल के प्रथम काव्यसंग्रह 'गमक' के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है– 'गमक' पं. राजेन्द्रप्रसाद शुक्ल का प्रथम काव्यसंग्रह है, जो सबसे पहले सन् 1985 में प्रकाशित हुआ था। अब तक उसके दो संस्करण निकल चुके हैं। 'गमक' में कवि श्री शुक्ल की 47 रचनाएँ संग्रहित हैं, जिनमें अधिकांश गीत हैं, कुछेक कविताएँ भी हैं। इनमें कवि की बहुआयामी और विविधरंगी, उदार कल्पनाओं की खुशबू की सुखद अनुभूति होती है। रचनाओं से गुजरते हुए स्पष्ट आभास होता है कि कवि की सम्पूर्ण चेतना गाँव और मिट्टी से सम्बद्धध है। गाँव और ग्राम्य जीवन उनके प्राणों में रचा–बसा लगता है। खेत–खलिहान, नदी–तालाब और पानी से भरे डबरे उनकी कविताओं के केन्द्रबिन्दु हैं।[3]

आचार्य डॉ. महेशचन्द्र शर्मा जी ने पं. राजेन्द्रप्रसाद शुक्ल के बारे में अपना मंतव्य प्रकट करते हुए लिखा है कि– साहित्य सर्जन में उनका मन मुख्य रूप से रमा था। ...संसदीय कार्यप्रणाली पर मौलिक ग्रन्थ 'लीक से हटकर' उनके सुदीर्घ अनुभव के आधार पर लिखा गया। राजनीति को साधना मानने वाले पं. शुक्ल एक शुद्धतम आचरण संहिता के प्रबल पक्षपाती सदैव रहे। दिखावट, बनावट और मिलावट के आजकल अनिवार्य कर्मकाण्ड से उनका आडम्बररहित जीवन सर्वथा दूर रहा।[4]

पं. शुक्ल की कृति 'मेरी विचार यात्रा' में कुल तीस लेखों का संग्रह है। इसमें विधायिका में पांच, विश्व परिदृश्य में एक, न्याय की ओर में दो, सपने की उपलब्धि में छः, शिक्षा प्रणाली एवं युवक में दो, गौरव प्रतीक में दस तथा आत्मनेपद में चार सहित कुल तीस विचार संग्रह शुक्लजी की विचारयात्रा के रूप में एक बहुरंगी साहित्यिक कलेवर के रूप मे प्रस्तुत हैं। इस पर अपना विचार रखते हुए लेखक पं. राजेन्द्रप्रसाद शुक्ल ने लिखा है कि– यात्रा की भला क्या भूमिका हो सकती है। यात्रा तो यात्रा होती है और इसमें पडाव होते हैं। हर पडा का अपना अलग रंग–ढंग होता है और अनुभव आस्वाद होता है। खट्टी–मीठी स्मृतियाँ होती हैं, जिन्हें यात्रा के दौरान मनुष्य सहेजता है। यह क्योंकि विचारयात्रा है अतः इसका परिवेश कुछ थोड़ा अलहदा हो सकता है। इसमें समाहित अनुभूतियों ओर संवेदनाओं से सम्बन्धित बिम्ब भी कुछ अलग किस्म के हो सकते हैं लेकिन वैविध्य का सिलसिला तो वही है जो इसके ''यात्रा'' नाम की सार्थकता से सम्बद्ध है।[5]

पं. राजेन्द्रप्रसाद शुक्ल की चतुर्थ कृति 'प्रश्नकाल से शून्य काल तक' जो संसदीय प्रक्रिया और कार्यप्रणाली पर मौलिक ग्रंथ है। इसके प्रथम संस्करण का प्रकाशन मार्च 1988 में हुआ, जिसकी सभी पुस्तकें शीघ्र ही बिक गईं। फलस्वरूप 2002 में इसके दूसरे संस्करण का प्रकाशन किया गया। इसकी भूमिका पर प्रकाश डालते हुए पं. राजेन्द्रप्रसाद शुक्ल ने लिखा है कि– यह पुस्तक 'प्रश्नकाल से शून्यकाल तक' संसदीय जीवन और प्रक्रिया से जूड़ी हुई हैं। ....एक सांसद की संसद में, विधायक की विधानसभा में क्या भूमिका होनी चाहिए ? उनकी क्या मर्यादाएँ हैं और क्या विशेषाधिकार हैं ? यह प्रश्न भी अधिक महत्व का है। उसकी आकांक्षाओं और भावनाओं की रक्षा किस प्रकार से हो यह हमारी आज की मुख्य सोच होनी चाहिए। जब मैं विधानसभा अध्यक्ष हुआ तब यही सारे प्रश्न मेरे समक्ष ज्यादा व्यापक होकर विस्तृत रूप से प्रस्तुत हुए। विधानसभा में मैंने देखा कि सर्वाधिक महत्वपूर्ण समय प्रश्नकाल से शून्यकाल तक होता है। ...इन जानकारियों के अभाव में इच्छा रहते हुए भी हमारे जनप्रतिनिधि जिस प्रमाण में जिस जोर के साथ अपनी बात को प्रस्तुत करना चाहते हैं उन्हें कठिनाई होती है। इस हेतु जहाँ विभिन्न प्रबोधन संगोष्ठी आदि की आवश्यकता होती है वहीं स्थायी रूप से प्रक्रियाओं की जटिलता को स्पष्ट करने के लिए लिखित रूप में भी विचार विमर्श किया जाना चाहिए। इसी बात को ध्यान में रखते हुए मैंने यह पुस्तक 'प्रश्नकाल से शून्यकाल तक' लिखना प्रारंभ किया। इस पुस्तक में एक नवीनता यह भी है कि विधानसभा में स्वयं कार्य करते रहने के अपने अनुभवों एवं स्वाभाविक शंकाएं–कुशंकाएं जो जनप्रतिनिधियों के मन में उठती है उनका समाधान करने का प्रयास किया गया है, वहीं शायद यह हिन्दी भाषा में मूल रूप से लिखित प्रथम ग्रंथ होगा जो संसदीय जीवन मे प्रकाशित किया जा रहा है। राष्ट्रभाषा हिन्दी के समक्ष मेरा तुच्छ नैवेद्य ग्राह्य होगा, इस भावना के साथ यह ग्रंथ अर्पित है।[6]

पं. राजेन्द्रप्रसाद शुक्ल की कृति 'धरती की बात' एक अद्वितीय रचना है, जिसमें राष्ट्रीय भावधार है। विधायिका, कानून एवं स्थानीय शासन व्यवस्था पर सूक्ष्म दृष्टि है। पत्रकारिता, भाषा व शिक्षा पद्धति पर सम्यक चिंतन है। सर्वे भवन्तु सुखिनः से अनुप्राणित लेख हैं। इस पर अपने विचार रखते हुए पं. राजेन्द्र

प्रसाद शुक्ल ने स्वयं लिखा है कि जब रत्न प्रसवनी वसुंधरा के तप्त आँचल को वर्षा की शुरुआती बूँदे नर्तन करती हुई सराबोर कर देती हैं तो मिट्टी से एक ऐसी सोंधी गंध चारों ओर महक उठती है, जिसे शब्दों में नही बाँधा जा सकता है, केवल महसूस किया जा सकता है। इसी प्रकार काव्य–संग्रह 'यथा संभव' भी साहित्य जगत में सामाजिक सरोकारों से भरपूर एक अवदान है– पं. राजेन्द्र प्रसाद शुक्ल जी का।[7] इसी प्रकार 'माटी की महक' निबन्ध संग्रह लेखक की ग्रामीण प्रकृति, उसकी सरल–सहज संवेदनात्मकता, उसका गहन चिंतन मनन, सांस्कृतिक, साहित्यिक, राजनीतिक दृष्टि से देश को गौरवशाली विरासत प्रदान करने वाले ऐतिहासिक महापुरुषों के जीवन मूल्यों का दस्तावेज प्रस्तुत करती है।[8]

पं. राजेन्द्रप्रसाद शुक्ल ने अपनी आत्मकथा भाग एक 'गाँव की गोद में' के बारे में अपना विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि– द्वंद्वात्मक सृष्टि में आशा–निराशा के बीच प्रबल प्रत्याशा की पिपाशा संघर्ष के लिए उत्प्रेरित करती है। भावनाओं को शब्दों का जामा पहनाने का मेरा स्वभाव विद्यार्थी जीवन से ही रहा है। ग्राम्य जीवन की बॉकी झॉकी ने जहॉ मुझमें काव्यानुराग का संचरण किया वहीं सामाजिक कार्यों, खादी–प्रसार, ग्राम–स्वराज्य अभियान, सहकारिता के क्रियाकलापों और भू–आंदोलन की सहभागिता ने उन प्रसंगों को लिपिबद्ध करने के लिए प्रेरित किया, जिनका मेरे निर्माण में व्यापक योगदान है। परिस्थितिजन्य तात्कालिक सामाजिक, राजनीतिक ओर साहित्यिक घटनाक्रम के साथ अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि का जिक्र करते हुए मैंने अपने जीवन की घ्टनाओं को कालक्रम से प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया है। दैनिक जीवन में घटित घटनाओं के साथ अपनी भावनाओं और क्रियाकलापों को संबद्ध कर लें तो वह आत्मकथा का स्वरूप ग्रहण कर लेता है और उससे प्राप्त अनुभव मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद भी हो सकते हैं। जीवन–प्रवाह में बहते हुए मैंने 'गाँव की गोद में' के इस प्रथम खण्ड में ग्राम्य संस्कृति के मुग्धकारी दृश्यों, रस्मों–रिवाज, तीज–त्योहारों और ऋतुओं का जिक्र किया है, क्योंकि गॉव से ही मैंने साहित्य–सृजन ओर लोक–सेवा का कार्य आरंभ किया था। उस समय राजनीति में आने की संभावना तो क्या, अनुमान भी नही था। साहित्य–सृजन से भी कुछ यश मिल सकता है, इसका भी मुझे अंदाज नही था। आगे चलकर मेरे रचनात्मक कार्यों ने भी मुझे रचनाधर्मिता से जुड़े रहने के प्रति प्रेरित किया।[9]

पं. राजेन्द्रप्रसाद शुक्ल की कृति 'संस्कृति का प्रवाह' में उन भावनाओं को प्रकट किया गया है जो राजनीतिक दलबंदी से परे हैं लेकिन आम आदमी से जुड़ी हैं। इससे चहुँ ओर साहित्य एवं संगीतमय वातावरण निर्मित होगा तथा सभी भारतीय भाषाओं का सम्मानपूर्वक संवर्धन होगा। इस पुस्तक में सभी क्षेत्रों के 29 लेख प्रकाशित हैं। इस पर अपनी बात रखते हुए पं. राजेन्द्रप्रसाद शुक्ल ने लिखा है कि– संस्कृतियाँ किसी की धरोहर नही होतीं, ये तो युग–युगांतर व शताब्दियों से बनती चली आती हैं वेश–भूषा या शैक्षणिक ज्ञान प्राप्त कर स्तरीय जीवन व्यतीत करने का अर्थ यह नही है कि हम अपनी मूलभूत संस्कृति से स्वयं को अलग कर लें। पशुओं की खाल, वृक्षों की छाल से लेकर आज के चमचमाते रेशमी वस्त्र भी हमारी संस्कृति में समाहित हैं, किन्तु जिस प्रकार से संस्कृतियों का मिश्रण हो रहा है, उससे अस्तित्व का संकट पैदा हो गया है। मानवजनित सम्पदाओं से नही, अपितु जीवन में राजनीतिक जटिलताओं और कुटिलताओं से मनुष्य अनेक विकृतियों में लिप्त हो चुका है। इस निबन्ध संग्रह में मेरी उन भावनाओं का भी प्रकटीकरण हुआ है जो राजनीतिक दलबन्दी की सीमाओं से परे हैं, किन्तु जिनका सरोकार आम आदमी से भी है। साहित्य के मूल्यों से संबन्धित अराजकता के इस युग में मेरा यह लघु प्रयास यदि थोड़ी सी भी व्यवस्था उत्पन्न कर सका तो मै अपने को कृतकृत्य मानूँगा।[10]

छ.ग. विधानसभा के तत्कालीन सचिव श्री भगवान देव ईसरानी ने पं. राजेन्द्र प्रसाद शुक्ल की पुस्तक 'संसदीय समग्र' के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि– 'संसदीय समग्र' पं. राजेन्द्रप्रसाद शुक्ल की संसदीय यात्रा का दस्तावेज है। श्री शुक्ल ने अपनी इस लम्बी यात्रा में जीवन के जिन–जिन पहलुओं को छुआ, जनहित के जिन–जिन विषयों पर अपने विचार प्रस्तुत किए, वे विचार संसदीय व्यवस्था में रुचि रखने वाले किसी भी शोध छात्र, जनप्रतिनिधि व आम जनता के लिए जानने व समझने वाली बात है। वर्ष 1967 से अब तक के संसदीय जीवन में श्री शुक्ल को विभिन्न रूपों में देखा व समझा जा सकता है। विभिन्न विषयों में उनके मौलिक विचारो को पढ़कर उनकी कार्यशैली व अनुभव की गहराई को भी नापा जा सकता है, उनके विचारों से लोकतंत्रात्मक मूल्यों के प्रति उनकी आस्था और जनता के प्रति उनकी निष्ठा को भी समझा जा सकता है। ...यह ग्रंथ एक योग्य राजनेता के अनुभवों का अर्क है इसे जो भी पीना चाहेगा, लाभान्वित होगा। इस प्रामाणिक दस्तावेज को काफी परिश्रम से तैयार किया गया है, और श्री शुक्ल की हर भूमिका को सही रूप में रखने का प्रयास किया गया है। मानव मूल्यों के पक्षधर व रूढ़िवादी विचारों के कट्टर विरोधी राजनेता के संसदीय अनुभवों का यह निचोड़ इस विधा में रुचि रखने वाले किसी भी पाठक के लिए रुचिकर होगा, ऐसा मेरा मानना है, इसलिए यह प्रतिभा आमजन के सामने आना भी जरूरी है और यह उसी का विनम्र प्रयास है।[11]

पं. राजेन्द्रप्रसाद शुक्ल की पुस्तक 'लोकतंत्र में राज्यपाल' भारतीय संसदीय परंपरा के इतिहास को गौरवान्वित करने वाली तथा भारतीय राजनीति को एक नई दिशा देने वाली है। इस पर अपने विचार व्यक्त करते हुए प्रोफेसर बी.पी.चन्द्रा ने लिखा है कि– ---'लीक से हटकर', 'प्रश्नकाल से शून्यकाल तक' व

लोकतंत्र में राज्यपाल जैसे प्रशासनिक विषयों के ग्रन्थ ऐसे मोती हैं जिनकी आभा कभी क्षीण नही हो सकती।[12]

'छत्तीसगढ़ की माटी से' संग्रह में आपको छत्तीसगढ़ के अतीत के गौरव की झांकी मिलेगी, पौराणिक काल से लेकर अद्यतन यहाँ की धरती को अपने पद चिन्हों से पावन करने वाले ऋषि–मुनियों, संतों, गुनियों–निर्गुनियों, मनीषियों, चिन्तकों का स्मरण मिलेगा, रामायण की कथा मिलेगी, कालीदास का मेघदूत मिलेगा, साथ ही प्रकृति की मनोहारिता, गाँव की सरलता, नगरों की आपाधापी और व्यस्तता के चित्र मिलेंगे, शहरों की आजादी में गांवों की गुलामी का दर्द सुन पड़ता है। गौतम और गाँधी के देश में राजनीति के हीन स्तर पर दुख से कातर स्वर मिलता है। लेकिन इन सबके बीच दृढ़ता के साथ एक केन्द्रीय स्वर ऊर्जा का, विश्वास का, आशा का, कर्मण्यता का व्यक्त हुआ है। संग्रह की सभी कविताएँ कवि की जीवनी शक्ति की साक्षी है। किन्तु एक अनूदित कविता है जो हठात आपका ध्यान आकर्षित कर लेती है।...इस प्रेरणादायक संग्रह के लिए श्री राजेन्द्रप्रसाद शुक्ल बधाई के पात्र हैं।[13]

पं. शुक्ल की पुस्तक 'क्षितिज का विस्तार' के बारे में यदि लिखा जाए, तो यह आजादी के बाद देश में संसदीय लोकतंत्र और लोकजीवन में मूल्यों के गढ़ने, बिखरने और संवरने के दृश्य उभारता है। संत विनोबा भावे के त्याग और बाद के सत्तालोलुप मानसिकता के बीच अंतर्द्वन्द्व दिखाता है। सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक घटनाक्रम के नेपथ्य में सभी रंगों की राजनीति के अंतःपुर किस प्रकार शराब–शबाब की हवस, धन और गन तथा आपराधिक गतिविधियों से प्रदूषित होते चले गए, इन सबका जीवंत विवरण इस पुस्तक में मिलता है।[14]

पं. राजेन्द्रप्रसाद शुक्ल की पुस्तक 'धुँधली पगडंडियाँ' छठवें निबन्ध–संग्रह के रूप में धर्म, दर्शन, कला, संस्कृति और साहित्य से परिपूर्ण पुस्तक है। इसमें कुल 27 लेख समाहित हैं। इसके बारे में विस्तृत प्रकाश डालते हुए पं. शुक्ल ने लिखा है कि– मानवता और सभ्यता के विकास का मूलाधार व्यक्ति की स्वतंत्र चेतना नही बल्कि सामाजिक चेतना की स्वतंत्रता है। धर्म, दर्शन, कला, संस्कृति और साहित्य से परिपूर्ण भारत वर्ष में पाश्चात्य संस्कृति का फूहड़ स्वरूप और हमारी तृष्णा अच्छाइयों से अधिक बुराईयों को बटोरने में प्रयत्नशील है। अपसंस्कृति के इस दौर में मुक्त व्यापार, भूमण्डलीकरण और सोच का नजरिया न जाने कौन सी सामाजिक परिभाषा को जन्म देना चाहता है\ देश को आजाद हुए 55 वर्ष हो गए किन्तु हम मानसिक गुलामी से आज भी नही उबर पाये हैं। हमारे देश के स्वतंत्रता संग्राम के राष्ट्रीय वीरों ने, संत–महापुरुषों ने, समाज सुधारको ने जिन राहों पर चलकर देश को आजाद कराया उन राहों पर चलने वालों की संख्या दिनोदिन घटती जा रही है। पथ खो गया है या पथिक भटक गये हैं। यह यक्षप्रश्न की भाँति उत्तर की प्रतीक्षा में है। नैराश्य और अपसंस्कृति के इस युग में मेरा यह लघु प्रयास जरा–सी भी आशा का स्वर भरने में सहायक सिद्ध होता है तो मेरा श्रम सार्थक हो जाएगा।[15]

इसी कड़ी में उनके जीवन की अंतिम कृति 'संघर्ष' आत्मकथा भाग तृतीय, जो अब उनकी अनंत यात्रा के बाद सन् 2009 में छत्तीसगढ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा प्रकाशित की गयी है में, सन् 1980 से 1987 तक के उनके संस्मरण व सन् 1987 से सन् 2006 तक उनके जीवन के विविध प्रसंगों का संक्षिप्त आलेख समाहित है। ...सन् 1985 से सन् 2006 तक का कालखण्ड उनके सार्वजनिक जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कालखण्ड है। वे सन् 1985 से सन् 1990 तक अविभाजित मध्यप्रदेश के विधानसभा अध्यक्ष रहे, सन् 1993 से सन् 2000 तक तत्कालीन दिग्विजय सिंह मंत्रीमण्डल में वरिष्ठ कैबिनेट मंत्री के रूप में अनेक विभागों का नेतृत्व किया। ...क्योंकि कोई भी आत्मकथा अपने आप में सम्पूर्ण नहीं होती और फिर आदरणीय बाबूजी (पं. राजेन्द्र प्रसाद शुक्ल जी) अपनी आत्मकथा को वास्तव में सम्पूर्ण नहीं कर पाये थे। अतः कथानक को एक रोचक मोड़ देने की कोशिश में अंतिम पृष्ठों के लेखन में हल्की सी स्वतंत्रता ली गयी है।[16]

प्रसिद्ध कवि एवं गीतकार श्री रामप्रतापसिंह जी 'विमल' का मानना है कि यदि पं. राजेन्द्रप्रसाद शुक्ल राजनीति व अन्य क्षेत्रों में न होकर केवल साहित्य के क्षेत्र में बढ़े होते तो आज उनकी रचनात्मक प्रतिभा राष्ट्रीय व अंतराष्ट्रीय क्षितिज पर देदीप्यमान होती। साहित्यकार पं. शुक्ल के अनय गुणों की चर्चा करते हुए श्री विमलजी लिखते हैं कि– यदि पं. राजेन्द्रप्रसाद शुक्ल का राजनीति में पदार्पण न भी होता तब भी उनकी रचनात्मक प्रतिभा उन्हे राष्ट्रीय, अंतराष्ट्रीय क्षितिज पर प्रतिष्ठित करने में सक्षम थी। राजनीति के कदम, गहन उद्वेग, आवेगों एवं अंत के मायाजाल से मुक्त क्षण उन्हे जब–जब मिले, सृजन की मंदाकिनी ने अपना प्रवाह साधा और गमक, धरती की बात, लीक से हटकर, लोकतंत्र में राज्यपाल, मेरी विचार यात्रा, प्रश्नकाल से शून्य काल तक, संसदीय प्रक्रिया व कार्यप्रणाली का उन्होंने प्रणयन कर प्रदेश के साहित्य की वृद्धि में योगदान किया। ---वे अपनी प्रशंसा कम दूसरों की ज्यादा पसंद करते हैं, पीठ थपथपाते, प्रोत्साहित करते हैं जो भी उनके समीप गया उनकी आत्मीयता, उदारता और वत्सलता से धन्य हो गया।[17]

सन्दर्भ :–

1. पाण्डेय, डॉ. सीमा व : विधापनपुरुष पं. राजेन्द्र प्रसाद शुक्ल, प्रथम संस्करण सिंह, अजय पाल 2013, पृ. क्र. 02.
2. शुक्ल, पं. राजेन्द्रप्रसाद : गाँव की गोद में, प्रभात प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण 2002, पृ. क्र. 43.

3. पाठक, डॉ0 अजय : सुकवि राजेन्द्र शुक्ल और उनका "गमक" (लेख) छत्तीसगढ़ की माटी से, वैभव प्रकाशन प्रकाशन रायपुर प्रथम संस्करण 2007 पृ. क्र. 71.

4. शर्मा, आचार्य डॉ. महेशचन्द : श्री और सरस्वती के संगम स्व. पं. राजेन्द्र जी शुक्ल (लेख) छत्तीसगढ़ की माटी से, वैभव प्रकाशन रायपुर, वर्ष 2007 पृ. क्र. 19.

5. शुक्ल, पं. राजेन्द्रप्रसाद : मेरी विचार यात्रा, रामप्रसाद एण्ड सन्स आगरा प्रथम संस्करण 1988 पृ. क्र. 05.

6. शुक्ल, पं. राजेन्द्रप्रसाद : प्रश्नकाल से लेकर शून्यकाल, रामप्रसाद एण्ड सन्स आगरा द्वितीय संस्करण 2002, पृ. क्र. v-vii.

7. साक्षात्कार : सिंह, डॉ. अजय पाल, सहायक प्राध्यापक, इतिहास दिनांक 30.01.2018.

8. मिश्र, डॉ. सुमन : माटी की महक के बहाने (लेख) समर्पित पचास वर्ष, संदर्भ ग्रंथ वैभव प्रकाशन रायपुर प्रथम संस्करण 2002 पृ. क्र. 395.

9. शुक्ल, पं. राजेन्द्रप्रसाद : गाँव की गोद में, प्रभात प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण 2002 पृ. क्र 07–08.

10. शुक्ल, पं. राजेन्द्रप्रसाद : संस्कृति का प्रवाह, विद्याविहार नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2002 पृ. क्र 07–08.

11. शुक्ल, पं. राजेन्द्रप्रसाद : संसदीय समग्र, सारांश प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण 2003 पृ. क्र 01–02.

12. चन्द्रा, प्रो. बी.पी. : व्यक्ति एक आयाम अनेक, (लेख) समर्पित पचास वर्ष, संदर्भ ग्रंथ वैभव प्रकाशन रायपुर प्रथम संस्करण 2002, पृ. क्र. 253.

13. शुक्ल, पं. राजेन्द्रप्रसाद : छत्तीसगढ़ की माटी से शताक्षी प्रकाशन रायपुर प्रथम संस्करण 2003, पृ. क्र. 05–06.

14. पूर्वोद्धृत : क्र. 07.

15. शुक्ल, पं. राजेन्द्रप्रसाद : धुँधाली पगडण्डियाँ, राजसूर्य प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004, पृ. क्र. 05

16. शुक्ल, पं. राजेन्द्रप्रसाद : संघर्ष, वैभव प्रकाशन रायपुर प्रथम संस्करण 2009, भूमिका– डॉ. शोभित बाजपेयी.

17. सिंह, रामप्रताप 'विमल' : उनकी सर्जना–शक्ति एवं मीत भाव (लेख) समर्पित पचास वर्ष, संदर्भ ग्रंथ वैभव प्रकाशन रायपुर प्रथम संस्करण 2002 पृ. क. 133–34.

❐❐❐